पाठ्यक्रम - २४

२४ अ आचरण की ओर बढ़ते कदम - सम्यक्चारित्र

संसार की कारणभूत बाह्य और अंतरंग क्रियाओं से निवृत्त होना अथवा मन वचन काय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पूर्वक विषय-वासना, हिंसादि पाप रूप अशुभ क्रियाओं का त्याग कर, शील व्रतादि रूप शुभ क्रियाओं को धारण करना ''सम्यक् चारित्र'' है।

अणुव्रत एवं महाव्रत की अपेक्षा वह चारित्र दो प्रकार का हो जाता है एकदेश चारित्र व सर्वदेश चारित्र (सकल चारित्र)। सकल चारित्र के वीतराग चारित्र व सराग चारित्र दो भेद हैं :-

1. वीतराग चारित्र :- शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के योगों से निवृत्त होना वीतराग चारित्र है। उत्सर्ग मार्ग, उपेक्षा संयम, निश्चय चारित्र, शुद्धोपयोग एकार्थवाची हैं।

2. सराग चारित्र :- सरागी जीव का प्राणियों और इन्द्रियों के विषय में अशुभ प्रवृत्ति के त्याग को सराग संयम अथवा सराग चारित्र कहते हैं। अपवाद मार्ग, एकदेश परित्याग, अपहृत संयम, सराग चारित्र, व्यवहार चारित्र, शुभोपयोग ये सब एकार्थवाची हैं।

सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय और यथाख्यात चारित्र की अपेक्षा सम्यक् चारित्र के पाँच भेद है :-

1. सामायिक चारित्र :- जिसमें सकल संयम को स्वीकार किया है, ऐसे सर्व सावद्य के त्याग रूप एक मात्र अनुत्तर एवं दुष्प्राप्य अभेद संयम/चारित्र को धारण करना ''सामायिक चारित्र'' है।

2. छेदोपस्थापना चारित्र :- यद्यपि दीक्षा ग्रहण करते समय साधु पूर्णतया साम्य रहने की प्रतिज्ञा करता है। परन्तु पूर्ण निर्विकल्पता में अधिक देर टिकने में समर्थ न होने पर व्रत, समिति, गुप्तिआदि रूप व्यवहार चारित्र तथा क्रियानुष्ठानो में अपने को स्थापित करता है, पुनः कुछ समय पश्चात् अवकाश पाकर साम्यता में पहुँच जाना और पुनः परिणामों के गिरने पर विकल्पों में स्थित होना ''छेदोपस्थापना चारित्र'' है। अथवा भेद रूप चारित्र को छेदोपस्थापना कहते हैं।

3. परिहार विशुद्धि चारित्र :- प्राणिवध से निवृत्ति को परिहार कहते हैं इससे युक्त शुद्धि जिस चारित्र में होती है वह ''परिहार विशुद्धि चारित्र'' है। यह चारित्र अत्यन्त निर्मल है जिसने अपनी आयु के तीस वर्ष घर में रहकर व्यतीत किए पश्चात् संयम धारण कर तीर्थंकर के पादमूल में प्रत्याख्यान नामक पूर्व का अध्ययन किया ऐसा धीर व उच्चदर्शी साधु ही परिहार विशुद्धि संयम का धारी हो सकता है।

4. सूक्ष्म साम्पराय चारित्र :- जिस चारित्र में कषाय अत्यन्त सूक्ष्म हो अथवा सूक्ष्म लोभ कषाय का संवेदन करने वाले दसवें गुणस्थानवर्ती मुनि का चारित्र ''सूक्ष्म साम्पराय चारित्र'' कहलाता है।

5. यथाख्यात चारित्र :- समस्त मोहनीय कर्म के उपशम या क्षय से आत्मा का जैसा स्वरूप है उसी प्रकार से अवस्थित होना ''यथाख्यात चारित्र'' है।

संस्मरण- गलत समझ को सुधार कर सही रास्ते पर चलना ही सच्ची अच्छी आदत है, ध्यान रखें कहीं आदत व्यसन न बन जाए। जब बालक विद्याधर को एक दिन शाम के समय बुखार आ गया वे सोने लेटने की तैयारी करने लगे अपने लिए बिस्तर बिछाने लगे तो परिवार वाले बोले दोनों बिरिया शाम को सोता है, लेटता है यह प्रवृत्ति आदत ठीक नहीं मानी जाती।

जब विद्याधर ब्रह्मचारी बने तब उन्हें समझ में आया शाम का समय सन्धिकाल कहलाता है यह सामायिक का काल होता है।

आचार्य विद्यासागर जी कभी भी दिन में सोते नहीं हैं, न ही आराम करते हैं, न उनके गुरु आचार्य ज्ञानसागर जी कभी दिन में सोते थे। आज बड़े गौरव से कहते हैं मेरे संघ में कोई भी दिन में नहीं सोता है।

पाठ्यक्रम - २४

२४ ब जैन जीव विज्ञान - शरीर, प्राण एवं जन्म

वास्तव में (निश्चय से) जीव ज्ञान-दर्शन उपयोग वाला, स्पर्श-रस-गंध-वर्ण से रहित अमूर्त स्वभाव वाला है। अर्थात् जीव को हम आँखों के माध्यम से देख नहीं सकते। फिर जो मनुष्यादि देखने में आ रहे वे कौन हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर यह है कि - जीव और पुद्गल इन दो के संयोग से उत्पन्न अवस्था विशेष है। जैसे प्रकाशमान बल्व। विद्युत (करंट) और बल्व का संयोग होने पर प्रकाश उत्पन्न होता है विद्युत देखने में नहीं आती किन्तु प्रकाशमान बल्व को देखकर करंट का ज्ञान हो जाता है। उसी प्रकार क्रियावान मनुष्यादि को देखकर यह मनुष्य जीव है ऐसा कहा जाता है। शुद्ध जीव देखने में नहीं आता कर्मबंध से सहित अशुद्ध जीव देखने में आता है अथवा निश्चय से कहें, तो पुद्गल ही देखने में आता है। विद्युत के अभाव में बल्व मात्र अकार्यकारी होता है उसी प्रकार जीव/आत्मा के अभाव में यह शरीर निष्क्रिय हो जाता है। शव अथवा मुर्दा कहा जाता है।

जीव और कर्मों का संबंध स्वर्ण पाषाण की तरह अनादि काल से है। विशेष प्रक्रिया द्वारा जैसे स्वर्ण पाषाण में से सोना पृथक् कर लिया जाता है किया जा सकता है। उसी प्रकार जीव और कर्मों को भी तप, ध्यान आदि की प्रक्रिया द्वारा पृथक्-पृथक् किया जा सकता है।

शरीर

शरीर नाम कर्म है जिसका उदय होने पर जीव को शरीर धारण करना पड़ता है। ये शरीर पाँच प्रकार के हैं-

(१) औदारिक शरीर, (२) वैक्रियिक शरीर, (३) आहारक शरीर, (४) तैजस शरीर, (५) कार्मण शरीर।

० जो शरीर अत्यन्त स्थूल तथा उदार हो उसे औदारिक शरीर कहते हैं।

० जो शरीर अनेक प्रकार के छोटे-बड़े, हल्के-भारी आदि अनेक रूप धारण करने की क्षमता रखता है, वैक्रियिक शरीर कहलाता है।

० तत्त्वादिक विषयक शंका होने पर, तीर्थयात्रा आदि का विकल्प होने पर, असंयम के परिहार हेतु ऋद्धिधारी मुनिराज के मस्तक से एक हाथ प्रमाण सर्वांग सुन्दर शुभ्र वर्णवाला जो पुतला निकलता है, उसे आहारक शरीर कहते हैं।

० औदारिक और वैक्रियिक शरीर में कांति और प्रकाश उत्पन्न करने वाले शरीर को तैजस शरीर कहते हैं। हमारे शरीर में रक्त संचार उष्मा के कारण होता है अत: यह उष्मा ही तैजस शरीर है एवं जिस जठराग्नि के माध्यम से पेट का भोजन पचता है वह भी तैजस शरीर का कार्य है।

० आठ कर्मों के समूह रूप शरीर को कार्मण शरीर कहते हैं। छतरी के मूठ की भाँति यह सब कर्मो का आधार भूत है।

औदारिक शरीर से आगे-आगे के शरीर सूक्ष्म होते जाते हैं किन्तु उनमें प्रदेशों की संख्या बढ़ती जाती है। प्रदेशों की अपेक्षा औदारिक शरीर के प्रदेशों से असंख्यात गुणे प्रदेश वैक्रियिक शरीर में, इससे असंख्यात गुणे प्रदेश आहारक शरीर में, इससे अनन्त गुणे प्रदेश तैजस शरीर में तथा इससे भी अनन्त गुणे प्रदेश कार्मण शरीर में होते हैं। प्रदेशों की संख्या अधिक होते हुए भी आगे-आगे अत्यधिक सघनता को लिये ये प्रदेश रहते हैं। अत: आगे-आगे शरीर सूक्ष्म होते जाते हैं। उदाहरण के लिए ५० ग्राम रुई अधिक स्थूलता को प्राप्त होती है जबकि ५० ग्राम ही लोहा उसकी अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्मता को धारण करता है।

० औदारिक शरीर से वैक्रियिक शरीर सूक्ष्म होते हुए भी स्थूलता का परित्याग नहीं करते अत: औदारिक और वैक्रियिक शरीर को हम नेत्रों द्वारा देख सकते हैं शेष शरीरों को नहीं।

० औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन शरीर पाँच इन्द्रियों के द्वारा पदार्थों का भोग उपभोग कर सकते हैं किन्तु कार्मण शरीर नहीं।

0 एक जीव में दो को आदि लेकर चार शरीर तक हो सकते हैं। किसी के दो शरीर हों तो तैजस और कार्मण। तीन हों तो तैजस, कार्मण और औदारिक अथवा तैजस, कार्मण और वैक्रियिक। चार हों तो तैजस, कार्मण, औदारिक और वैक्रियिक शरीर अथवा तैजस, कार्मण, औदारिक और आहारक हो सकते हैं। एक साथ पाँच शरीर नहीं हो सकते क्योंकि वैक्रियिक तथा आहारक ऋद्धि एक साथ नहीं होती है।

प्राण

शरीरधारी प्राणियों में जो जीवन शक्ति है अर्थात् जिससे प्राणी जीता था, जीता है व जीएगा उसे प्राण कहते हैं। इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छवास इनके उत्तर भेद करने पर दस प्राण हो जाते हैं।

५ इन्द्रिय प्राण – स्पर्शन इन्द्रिय प्राण, रसना इंद्रिय प्राण, घ्राण इंद्रिय प्राण, चक्षु इंद्रिय प्राण और कर्ण इंद्रिय प्राण।

३ बल प्राण – मनबल प्राण, वचन बल प्राण और काय बल प्राण।

१ आयु प्राण तथा १ श्वासोच्छवास प्राण।

एकेन्द्रिय आदि जीवों में प्राणों की संख्या सारणी के माध्यम से समझेंगे।

इन्द्रिय	पर्याप्तक	अपर्याप्तक
एक इन्द्रिय जीव	स्पर्शन इ. आयु, काय बल, श्वा. (4)	श्वासो.बिना (3)
द्वि इन्द्रिय जीव	उपरोक्त 4 + रसना इ.+वचन बल (6)	श्वा. + वचन बिना (4)
त्री इन्द्रिय जीव	उपरोक्त 6 + घ्राण इन्द्रिय प्राण (7)	श्वा. + वचन बिना (5)
चार इन्द्रिय जीव	उपरोक्त ७ + चक्षु इन्द्रिय प्राण (८)	श्वा. + वचन बिना (7)
असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव	उपरोक्त ८ + कर्ण इन्द्रिय प्राण (९)	श्वा. + वचन बिना (8)
संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव	उपरोक्त ९ + मन बल प्राण (१०)	उपरोक्त + मन बिना (18)

सयोग केवली अरिहन्त के वचन बल, आयु, श्वासोच्छवास और काय बल ये चार प्राण होते हैं एवं अयोग केवली के मात्र एक आयु प्राण होता है।

पर्याप्ति – आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा और मन रूप शक्तियों की पूर्णता के कारण को पर्याप्ति कहते हैं। पर्याप्त नाम कर्म के उदय से सहित जिन जीवों की शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जाती है, उन्हें पर्याप्तक जीव कहते हैं।

पर्याप्तक नाम कर्म के उदय से युक्त जीव की जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक उसे निवृत्ति अपर्याप्तक कहते हैं। ये जीव नियम से पर्याप्तियाँ पूर्ण करेंगे। अपर्याप्त नामकर्म के उदय से सहित जिन जीवों की एक भी पर्याप्ति न पूर्ण हुई है और न आगे पूर्ण होगी, उन्हें लब्धि अपर्याप्तक जीव कहते हैं।

जन्म

एक गति को छोड़ दूसरी गति में जीव के उत्पन्न होने को जन्म कहते हैं, वह जन्म दो प्रकार का होता है, पहला जन्म अन्य गति में उत्पत्तिका प्रथम समय तथा दूसरा जन्म – योनि निष्क्रमण रूप अर्थात् गर्भ से बाहर आने रूप । जन्म स्थान में प्रवेश करते ही यह जीव अपने शरीर निर्माण हेतु, योग्य पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण करता है तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल में शरीर, इंद्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा और मन का निर्माण करता है। उसके बाद यथायोग्य काल में विकास को प्राप्त हो गर्भ से बाहर निकलता है। यह जन्म तीन प्रकार का होता है – (१) गर्भजन्म (२) उपपाद जन्म (३) सम्मूर्छन जन्म।

१. माता के उदर में रज और वीर्य के संयोग से जो जन्म होता है उसे गर्भजन्म कहते हैं। यह जन्म भी तीन प्रकार का है जरायु, अण्डज एवं पोत जन्म। जो जाल के समान प्राणियों का आवरण है और जो मांस और शोणित (खून) से बना है उसे जरायु कहते हैं, इसमें से जन्म लेने वाले जरायुज कहलाते हैं। पर्याप्तक मनुष्य, गाय, घोड़े आदि जरायुज हैं। जो जीव नख के समान कठोर अवयव वाले अण्डे से उत्पन्न होते हैं उन्हें अण्डज कहते हैं। जैसे चील, कबूतर, मुर्गा आदि। जो जीव आवरण रहित उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होते ही चलने-फिरने लग जाते हैं, उन्हें पोत कहते हैं। जैसे – सिंह, हिरण, बिल्ली आदि।

२. सम्पुट (ढकी हुई)शय्या एवं ऊँट आदि मुखाकार बिलों में लघु अन्तर्मुहूर्त काल में ही जीव का उत्पन्न होना उपपाद जन्म है। उपपाद जन्म देव और नारकियों के ही होता है। जन्मते ही उनका शरीर युवक की तरह होता है।

३. आस-पास के योग्य वातावरण से पुद्गलों को ग्रहण कर जो जन्म होता है उसे सम्मूर्छन जन्म कहते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर चार इंद्रिय तक के सभी जीव सम्मूर्छनज होते हैं। कोई-कोई पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च तथा- मल-मूत्र, पसीना आदि में उत्पन्न होने वाले मनुष्य भी सम्मूर्छनज होते हैं।

२४ स जैन अमर शहीद - मोतीचंद शाह

सोलापुर जिला के करकंब गाँव में सेठ पद्मसी के यहाँ ई. सन् १८९० में मोतीचंद जी का जन्म हुआ था। पिताजी का देहान्त होने पर वे अपने मामा, मौसी के यहाँ सोलापुर आए। वहीं आपका प्रारम्भिक अध्ययन हुआ। दुधनी गाँव से शिक्षा के लिए सोलापुर में आए बालचंददेवचंद जी (मुनि श्री समन्तभद्र महाराज) आपके परममित्र थे। आप दोनों ने कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र पर देशभूषण-कुलभूषण भगवान के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया था।

देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत होकर सन् १९०६ में आपने बालोत्तेजक समाज 'सोलापुर' की स्थापना तिलकजी के सान्निध्य में की थी। धर्म शिक्षा एवं राष्ट्रसेवा की भावना मन में लेकर आप देवचंद, बालचंद आदि साथियों के साथ जयपुर के पं. अर्जुनलालजी सेठी के पास पहुँचे।

पं. अर्जुनलालजी भी क्रांतिकारी विचारधारा के थे। अंग्रेजों के सहयोगी समर्थन किसी महंत के हत्यारों की सहायता करने के दण्ड में आपको आरा कोर्ट ने फाँसी की सजा सुनाई। तब वन्दे मातरम् कहते हुए उन्होंने हँसते-हँसते सजा स्वीकार कर उत्तम समाधि साधना की। अंतिम इच्छा भगवान् के दर्शन की होने पर प्रात: ४ बजे ही गाँव के मंदिर से पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति जेल के कमरे में लाई गई, उत्कृष्ट भावों से उन्होंने भगवान के दर्शन किए, सामायिक की और तत्त्वार्थसूत्र का पठन कर एकाग्रता से सामायिक पाठ का श्रवण किया तथा एक घंटे बाद मात्र २५ वर्ष की आयु में उन्हें फाँसी लगा दी गई।

जय बोलो जय बोलो वीर प्रभु की जय बोलो,
दुनिया के हर कोने से सब मिलकर के जय बोलो॥
ये वो शीतल छाया है, यहाँ नही छल माया है ...२
सत्य अहिंसा यही धरम है, यही सभी को भाया है।
दुनिया के हर कोने से...
महावीर की ये वाणी सारी दुनिया ने मानी ...२
जियो सभी को जीने दो मत करना तुम मनमानी।
दुनिया के हर कोने से...
धर्म का झंडा लहराए, कभी न ये झुकने पाये ... २
आचार्य श्री विद्यासागर जी, हम सब के मन को भाए।
दुनिया के हर कोने से...

आध्यात्मिक जाग्रति और सम्यग्ज्ञान का प्रतिफल रहा कि वे अन्त समय तक आकुल-व्याकुल नहीं रहे अपितु प्रसन्नता पूर्वक फाँसी के फन्दे पर झूल गए। कारागृह में रहते हुए उन्होंने अपने युवा मित्रों के लिए **खून से पत्र लिखा** था, जिसके कुछ बिन्दु इस प्रकार हैं-

१. जो हुआ सो हुआ और जो हुआ वह होने ही वाला था, परन्तु हमें ऐसी स्थिति में निराश होने का कोई कारण नहीं क्योंकि जिन्होंने अनंत चतुष्टय प्राप्त किया, जो अनिर्वचनीय आनंद में लीन हुए हैं, उन महान पूर्वजों का और तेजस्वी आचार्यों का अभेद्य छत्र हमारे माथे पर है।

२. दिन और संकट बीत जाएंगे, लेकिन कृति हमेशा के लिए चिरंतन रहेगी। कर्त्तव्य दक्षता से काम करें तो स्वदेश की और जैन धर्म की उन्नति सर्वस्वरूप से अपने हाथ में ही है।

३. जैनधर्म की उन्नति के लिए हमें संकट सहने के लिए सदा तैयार रहना चाहिए।

४. सिर्फ खुद का पेट भरने के लिए और परिवार के पोषण के लिए मैं विद्वान् बनूँ तो उस विद्वत्ता का क्या काम?

५. मैं जो कुछ सीखूँगा वह स्वधर्म के लिए ही, अमीर हुआ तो सिर्फ स्वधर्म के लिए, गरीब रह गया तो भी स्वधर्म के लिए ही, मैं जिऊँगा तो सिर्फ स्वधर्म के लिए और मरूंगा तो भी स्वधर्म की सेवा में।

जो गलती छोड़कर बैठे उसे भगवान कहते हैं, जो गलती कर सुधरता है उसे इंसान कहते हैं।
समझता जो न गलती को उसे हैवान कहते हैं, करे गलती पर जो गलती उसे शैतान कहते हैं॥

तत्त्वार्थ सूत्र

अथ तृतीयोऽध्यायः

रत्न शर्करा, बालुका पङ्क, धूम तमो-,महातमः प्रभा, भूमयोघनाम्बु, वाताकाश प्रतिष्ठाः, सप्ताधोऽधः ॥१॥ तासु त्रिंशत्, पञ्चविंशति, पञ्चदश, दश त्रि, पञ्चोनैक, नरक-शत- सहस्त्राणि, पञ्च चैव, यथाक्रमम् ॥२॥ नारका नित्या-,शुभतर लेश्या, परिणाम देह, वेदना विक्रियाः ॥३॥ परस्परोदीरित, दुःखाः ॥४॥ संक्लिष्टा-,सुरोदीरित, दुःखाश्च, प्राक् चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वेक, त्रि सप्त, दश सप्तदश, द्वाविंशति, त्रयस्त्रिंशत्, सागरोपमा, सत्त्वानां, परा स्थितिः ॥६॥ जम्बूद्वीप, लवणोदादयः, शुभनामानो, द्वीप-समुद्राः ॥७॥ द्वि-र्द्वि-र्विष्कम्भाः, पूर्व- पूर्व परिक्षेपिणो, वलया-कृतयः ॥८॥ तन्-मध्ये, मेरु नाभिर्वृत्तो, योजनशत-, सहस्त्र विष्कम्भो, जम्बूद्वीपः ॥९॥ भरत हैमवत, हरि विदेह, रम्यक हैरण्य-,वतैरावत, वर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्-विभाजिनः, पूर्वा-परायता, हिमवन् महाहिमवन्, निषध नील, रुक्मि शिखरिणो, वर्षधर पर्वताः ॥११॥ हेमार्जुन तपनीय, वैडूर्य रजत, हेममयाः ॥१२॥ मणि विचित्र पार्श्वा, उपरि मूले च, तुल्य विस्ताराः ॥१३॥ पद्म महापद्म, तिगिंछ केसरि, महापुण्डरीक पुण्डरीका, ह्रदास्-तेषा-,मुपरि ॥१४॥ प्रथमो, योजन सहस्त्रायामस्-,तदर्द्ध विष्कम्भो, ह्रदः ॥१५॥ दश, योजनाव-गाहः ॥१६॥ तन्-मध्ये, योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद्-द्विगुण, द्विगुणा ह्रदाः, पुष्कराणि च ॥१८॥ तन्-निवासिन्यो देव्यः, श्री ह्री धृति, कीर्ति बुद्धि लक्ष्म्यः, पल्योपम स्थितयः, स-सामानिक परिषत्काः ॥१९॥ गंगा-सिन्धु, रोहि-द्रोहितास्या, हरिद्-धरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नारी-नरकान्ता, सुवर्ण-रूप्यकूला, रक्ता-रक्तोदाः, सरितस्-,तन्-मध्यगाः ॥२०॥ द्वयो-र्द्वयोः, पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ शेषास्-,त्वपरगाः ॥२२॥ चतुर्दश नदी, सहस्त्र परिवृता, गङ्गा सिन्ध्वादयो, नद्यः ॥२३॥ भरतः षड्विंशति, पञ्चयोजन-,शत विस्तारः, षट् चैकोन-विंशति भागा, योजनस्य ॥२४॥ तद्-द्विगुण, द्विगुण विस्तारा, वर्षधर वर्षा, विदेहान्ताः ॥२५॥ उत्तरा, दक्षिण तुल्याः ॥२६॥ भरतै-रावतयो-,र्वृद्धि ह्रासौ,षट्समयाभ्या-,मुत्सर्पिण्य-,वसर्पिणीभ्याम् ॥२७॥ ताभ्या-मपरा, भूमयोऽवस्थिताः ॥२८॥ एक द्वि त्रि, पल्योपम स्थितयो, हैमवतक, हारिवर्षक, दैवकुरवकाः ॥२९॥ तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु, संख्येय कालाः ॥३१॥ भरतस्य विष्कम्भो, जम्बूद्वीपस्य, नवतिशत भागः ॥३२॥ द्वि-,र्धातकीखण्डे ॥३३॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥ प्राङ् मानुषोत्तरान्-,मनुष्याः ॥३५॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥ भरतै-रावत विदेहाः, कर्मभूमयोऽन्यत्र, देवकुरूत्तर-कुरुभ्यः ॥३७॥ नृ-स्थिती, परावरे त्रिपल्योप-,मान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥ तिर्यग्-योनिजानां च ॥३९॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

देवाश-,चतु-र्णिकायाः ॥१॥ आदितस्-त्रिषु, पीतान्तलेश्याः ॥२॥ दशाष्ट पञ्च, द्वादश विकल्पाः, कल्पोप-पन्न, पर्यन्ताः ॥३॥ इन्द्र सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषदात्मरक्ष-, लोकपालानीक, प्रकीर्ण-काभियोग्य, किल्विषिकाश-,चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंश, लोकपाल-वर्ज्या, व्यन्तर ज्योतिष्काः ॥५॥ पूर्वयो-,र्द्वीन्द्राः ॥६॥ काय प्रवीचारा, आ ऐशानात् ॥७॥ शेषाः, स्पर्श रूप, शब्द मनः, प्रवीचाराः ॥८॥ परेऽप्रवीचाराः ॥९॥ भवनवासिनोऽ-,सुर नाग, विद्युत् सुपर्णाग्नि, वात स्तनितो-,दधि द्वीप दिक्,कुमाराः ॥१०॥ व्यन्तराः, किन्नर किंपुरुष, महोरग गन्धर्व, यक्ष राक्षस, भूत पिशाचाः ॥११॥ ज्योतिष्काः, सूर्या चन्द्रमसौ, ग्रह नक्षत्र, प्रकीर्णक- तारकाश-च ॥१२॥ मेरु प्रदक्षिणा, नित्य-गतयो, नृलोके ॥१३॥ तत् कृतः, काल विभागः ॥१४॥ बहि-,रवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥१६॥ कल्पोप--पन्नाः, कल्पातीताश-च ॥१७॥ उप-र्युपरि ॥१८॥ सौधर्मैशान, सानत्कुमार- माहेन्द्र, ब्रह्म-बह्मोत्तर, लान्तव- कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार- सहस्त्रा-,रेष्वानत-प्राणतयो-,रारणा-च्युतयो-,र्नवसु ग्रैवेयकेषु, विजय वैजयन्त, जयन्ता-पराजितेषु, सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥ स्थिति प्रभाव, सुख द्युति लेश्या-, विशुद्धीन्द्रियावधि-, विषयतोऽधिकाः ॥२०॥ गति शरीर, परिग्रहाभि-मानतो, हीनाः ॥२१॥ पीत पद्म, शुक्ल लेश्या, द्वि त्रि, शेषेषु ॥२२॥ प्राग्-ग्रैवेकेभ्यः, कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्म लोकालया, लौकान्तिकाः ॥२४॥ सारस्वतादित्य, वह्न्यरुण, गर्दतोय तुषिता-,व्याबाधा-रिष्टाश-च ॥२५॥ विजयादिषु, द्विचरमाः ॥२६॥ औपपादिक, मनुष्येभ्यः, शेषास्-तिर्यग्-,योनयः ॥२७॥ स्थिति-,रसुर नाग, सुपर्ण द्वीप शेषाणां, सागरोपम त्रिपल्योप-मार्द्ध, हीन-मिताः ॥२८॥ सौधर्मैशानयोः, सागरोपमे अधिके ॥२९॥ सानत्कुमार माहेन्द्रयोः, सप्त ॥३०॥ त्रि सप्त, नवैकादश त्रयोदश, पञ्चदशभि-,रधिकानि तु ॥३१॥ आरणा-च्युता-,दूर्ध्व-मेकैकेन, नवसु ग्रैवेयकेषु, विजयादिषु, सर्वार्थसिद्धौ च ॥३२॥ अपरा, पल्योपम-मधिकम् ॥३३॥ परतः परतः, पूर्वा पूर्वाऽनन्तराः ॥३४॥ नारकाणां च, द्वितीयादिषु ॥३५॥ दशवर्षसहस्त्राणि, प्रथमायाम् ॥३६॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यन्तराणां च ॥३८॥ परा, पल्योपम- मधिकम् ॥३९॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्टभागोऽ-,परा ॥४१॥ लौकान्तिकाना-मष्टौ, सागरोप-माणि, सर्वेषाम् ॥४२॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

एकीभाव स्तोत्र

आहार्य्येभ्यः, स्पृहयति परं, यः स्वभावादहृद्यः, शस्त्रग्राही, भवति सततं, वैरिणा यश्च शक्यः।
सर्वाङ्गेषु, त्वमसि सुभगस्, त्वं न शक्यः परेषां, तत्किं भूषा वसनकुसमैः, किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥१९॥

अर्थ : हे भगवन्! (**यः**) जो (**स्वभावात्**) स्वभाव से (**अहृद्यः स्यात्**) अमनोज्ञ-कुरूप होता है (**स एव**) वह ही (**आहार्य्येभ्यः**) वस्त्राभूषणादि के द्वारा शरीर को अलंकृत करने की (**स्पृहयति**) इच्छा करता है (**च**) और (**यः**) जो (**वैरिणा**) शत्रु के द्वारा (**शक्यः**) जीतने योग्य होता है, वही (**शस्त्रग्राही भवति**) शस्त्रों को ग्रहण करने वाला होता है-उसे ही त्रिशूल-गदा-भाला-बरछी-तलवार आदि अस्त्रों की आवश्यकता होती है-किन्तु हे भगवन्! (**त्वम्**) आप (**सर्वाङ्गेषु सुभगः असिः**) सर्वांग रूप से सुन्दर हो, और (**त्वं परेषां न शक्यः**) न आप शत्रुओं के द्वारा जीते जा सकने योग्य हो, (**तत्**) इस कारण (**तव**) आपको (**भूषावसनकुसुमैः**) आभूषण, वस्त्र तथा फूलों से (**च**) और (**उदस्त्रैः अस्त्रैः किं**) अस्त्र-शस्त्रों से क्या प्रयोजन है ?

इन्द्रः सेवां, तव सुकुरुतां, किं तया श्लाघनं ते, तस्यैवेयं, भवलयकरी, श्लाघ्यतामातनोति।
त्वं निस्तारी, जननजलधेः, सिद्धिकान्तापतिस्त्वं, त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम्॥२०॥

अर्थ : हे जिनेन्द्र! (**इन्द्रः**) इन्द्र (**तव**) आपकी (**सेवाम्**) सेवा को (**सुकुरुताम्**) अच्छी तरह से करे, (**तया**) उसके द्वारा (**ते**) आपकी (**किं श्लाघनं**) क्या प्रशंसा है ? (**इयम्**) यह सेवा तो (**तस्य एव**) उस इन्द्र की ही (**भवलयकरी**) संसार परिभ्रमण का नाश करने वाली (**श्लाघ्यताम्**) प्रशंसा को (**आतनोति**) विस्तृत करती है (**त्वं**) आप (**जननजलधेः**) संसार-समुद्र से (**निस्तारी**) तारने वाले हैं तथा (**त्वं**) आप (**सिद्धिकान्ता पतिः**) मुक्तिरूपी स्त्री के स्वामी हैं और (**त्वं**) आप (**लोकानां**) तीनों लोकों के (**प्रभुः**) निग्रह-अनुग्रह में समर्थ है, (**इत्थम्**) इस प्रकार (**इति**) यह (**तव**) आपका (**स्तोत्रम्**) स्तोत्र-स्तवन (**श्लाघ्यते**) प्रशंसनीय है।

वृत्तिर्वाचा, मपरसदृशी, न त्वमन्येन तुल्यः, स्तुत्युद्गाराः, कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्, भक्तिपीयूष पुष्टास्, ते भव्यानामभिमतफलाः, पारिजाता भवन्ति॥२१॥

अर्थ : (**भगवन्!**) हे स्वामिन्! (**वाचां वृत्तिः**) आपके वचनों की प्रवृत्ति (**अपरसदृशी न**) दूसरे के समान नहीं है (**न त्वं अन्येना तुल्यः**) न आप भी अन्य के सदृश हैं (**ततः**) इसलिए (**नः**) हमारे (**अमी**) ये (**स्तुत्युद्गाराः**) स्तुति-वाक्य (**त्वयि**) आपके विषय में (**कथं इव**) किस तरह (**क्रमन्ते**) संगत हो सकते हैं-पहुँच सकते हैं (**तदपि**) तो भी (**भक्तिपीयूषपुष्टाः**) भक्तिरूपी अमृत से परिपुष्ट हुए (**ते**) वे स्तुति के वाक्य (**भव्यानाम्**) भव्यजीवों के लिए (**अभिमतफलाः**) इच्छित फल के देने वाले (**पारिजाताः**) कल्पवृक्ष (**भवन्ति**) होते हैं।

कोपावेशो, न तव न तव, क्वापि देव! प्रसादो, व्याप्तं चेतस्, तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षम्।
आज्ञावश्यं, तदपि भुवनं, सन्निधि वैरहारी, क्वैवंभूतं, भुवनतिलक!, प्राभवं त्वत्परेषु॥२२॥

अर्थ : (**देव!**) हे नाथ! (**तव**) आपका (**क्वापि**) किसी पर भी (**कोपावेशः**) क्रोधभाव (**न अस्ति**) नहीं है और (**न तव**) न आपकी (**क्वापि**) किसी पर (**प्रसादो**) प्रसन्नता है (**हि**) निश्चय से (**अनपेक्षम्**) स्वार्थरहित (**तव**) आपका (**चेतः**) मन (**परम उपेक्षया एव**) अत्यन्त उदासीनता से (**व्याप्तम्**) व्याप्त है (**तदपि**) तो भी (**भुवनं**) संसार (**आज्ञावश्यं**) आपकी आज्ञा के अधीन है और आपकी (**सन्निधिः**) समीपता/निकटता (**वैरहारी**) परस्पर के वैर-विरोध को हरने वाली है और इस तरह (**भुवनतिलक!**) तीनों लोकों में श्रेष्ठ हे देव! (**एवम्भूत**) ऐसा (**प्राभवं**) प्रभाव (**त्वत्**) आपसे (**परेषु**) भिन्न-दूसरे हरि-हरादिक देवों में (**क्व भवेत्?**) कहाँ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

देव! स्तोतुं, त्रिदिव गणिका, मण्डलीगीतकीर्तिं, तोतूर्ति त्वां, सकलविषय, ज्ञानमूर्तिं र्जनो यः।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्थास्, तत्त्वग्रन्थ, स्मरणविषये, नैष मोमूर्ति मर्त्यः॥२३॥

अर्थ : (**देव!**) हे देव! (**त्रिदिवगणिका-मण्डली-गीतकीर्तिं**) स्वर्ग की अप्सराओं के समूह द्वारा जिनकी कीर्ति गाई गई है, ऐसे तथा (**सकल-विषयज्ञानमूर्तिं**) समस्त पदार्थों को विषय करने वाले ज्ञान की मूर्ति स्वरूप (**त्वां**) आपकी

(**स्तोतुं**) स्तुति करने के लिए (**यः जनः**) जो मनुष्य (**तोतूर्तिः**) शीघ्रता करता है वह (**क्षेमं पदं अटतः**) कल्याणकारी स्थान अर्थात् मोक्ष को जाते हुए (**तस्य**) उस मनुष्य का (**पन्थाः**) मार्ग (**जातु**) कभी भी (**न जोहूर्ति**) कुटिल नहीं होता और (**न एवः मर्त्यः**) न यह मनुष्य (**तत्त्वग्रन्थ-स्मरणविषय**) तत्त्व ग्रन्थों के स्मरण के विषय में (**मोमूर्ति**) मूर्च्छित होता है।

चित्ते कुर्वन्, निरवधिसुख, ज्ञानदृग्वीर्यरूपं, देव! त्वां यः, समयनियमा, दाऽऽदरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गं, स खलु सुकृति, तावता पूरयित्वा, कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधा पञ्चितानाम्॥२४॥

अर्थ : (**देव!**) हे जिनेन्द्र! (**यः**) जो मनुष्य (**निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपम्**) अनन्तसुख, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तवीर्य स्वरूप (**त्वाम्**) आपको (**चित्ते कुर्वन्**) मन/हृदय में धारण करता हुआ (**समयनियमात्**) समय के नियम से अर्थात् निश्चित समय तक (**आदरेण**) विनयपूर्वक (**स्तवीति**) आपकी स्तुति करता है। (**खलु**) निश्चय से (**सः**) वह (**सुकृती**) पुण्यवान् (**तावता**) उस स्तवन मात्र से (**श्रेयोमार्गं**) मोक्षमार्ग का (**पूरयित्वा**) पूर्ण करके (**पञ्चधा पञ्चितानाम्**) पाँच प्रकार से विस्तृत (**कल्याणानाम्**) कल्याणकों का-गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण रूप पञ्चकल्याणकों का (**विषयः भवति**) पात्र होता है।

भक्तिप्रह्व, महेन्द्रपूजित पद, त्वत्कीर्तने न क्षमाः, सूक्ष्मज्ञानदृशोऽपि संयमभृतः, के हन्त मन्दा वयम्।
अस्माभिः स्तवनच्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते, स्वात्माधीनसुखैषिणां स खलु नः कल्याणकल्पद्रुमः॥२५॥

अर्थ : (**भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद!**) भक्ति से नम्रीभूत इन्द्रों के द्वारा जिनके चरण पूजित हुए हैं, ऐसे हे जिनेन्द्र! (**सूक्ष्मज्ञानदृशः**) सूक्ष्मज्ञान ही जिनके जिनके नेत्र हैं, ऐसे (**संयमभृतः अपि**) तपस्वी भी अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानादि के धारक संयमी योगीश्वर भी (**त्वत्कीर्तिने**) आपके गुण-गान में जब (**क्षमाः न 'सन्ति'**) समर्थ नहीं हैं, तब (**हन्त**) खेद है कि (**वयं मन्दाः के**) हम जैसे मन्दबुद्धि पुरुष आपकी स्तुति करने में कैसे समर्थ हो सकते हैं? (**तु**) किन्तु (**स्तवनच्छलेन**) स्तवन के छल से (**अस्माभिः**) हमारे द्वारा (**त्वयि**) आपमें (**परः**) उत्कृष्ट (**आदरः**) सम्मान (**तन्यते**) विस्तृत किया जाता है (**खलु**) निश्चय से (**सः**) वह सम्मान ही (**स्वात्माधीनसुखैषिणां**) निजात्मा के आश्रित सुख के चाहने वाले (**नः**) हम लोगों के लिए (**कल्याणकल्पद्रुमः**) कल्याण करने वाला कल्पवृक्ष होवे।

वादिराजमनु शाब्दिकलोको, वादिराजमनुतार्किकसिंहः,
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते, वादिराजमनुभव्यसहायः॥२६॥

अर्थ : (**शाब्दिकलोकः**) वैयाकरण-व्याकरण शास्त्र के वेत्ता (**वादिराजम्**) अनु वादिराज से हीन हैं (**तार्किकसिंहः**) श्रेष्ठ नैयायिक (**वादिराजम् अनु**) वादिराज से हीन है और (**ते काव्यकृतः**) प्रसिद्ध कवि लोग (**वादिराजम् अनु**) वादिराज से हीन हैं (**भव्यसहायः**) सज्जनगण (**वादिराजम् अनु**) वादिराज से हीन हैं।

निश्चय नय अवक्तव्य

उदाहरण : एक गुरु व शिष्य थे। गुरु मौनपूर्वक साधनारत रहकर ध्यान अध्ययन में संलग्न रहते थे। पर शिष्य हमेशा गुरु की महिमा का बखान करता था जिससे गुरु व शिष्य दोनों की महिमा बढ़ती थी। अगर गुरु बोल जाए तो गुरु की महिमा कम हो जाए। अतः उनके नहीं बोलने से ही उनकी ख्याति दिग्दिगंत तक फैली हुई थी। शिष्य का बोलना भी अति आवश्यक था। अगर न बोले तो गुरु की महिमा कौन बताए।

इसी प्रकार निश्चय नय अवक्तव्य अर्थात् बोलता नहीं इसलिए इसकी महिमा है। व्यवहार नय बोलता है और बोलकर के निश्चय नय की महिमा बतलाता है। अगर वह न बोले तो निश्चय की महिमा भी नहीं आती। दूसरी बात वस्तु का स्वरूप जैसा है उसका कुछ भी वर्णन न किया जाए तो भव्यात्मा को समझ में भी नहीं आएगा। इसलिए उसका संयोगों की अपेक्षा व गुण-गुणी की अपेक्षा भी भेद करके बताना पड़ता है और व्यवहार नय का अवलंबन लेना पड़ता है और कोई संयोगों में न अटक जाए। उन्हीं विकल्पों में न रह जाए तो उसे निश्चय नय का अवलंबन देते हैं।

कुगुरु कुदेव कुधर्म की संगति वैसी है जैसे गमन करने वाले को चढ़ाव और उल्टी हवा चलती हो तो चढ़ना मुश्किल हो जाता है और अपने गंतव्य की प्राप्ति कठिन हो जाती है। सच्चे देव, गुरु, शास्त्र की संगति वैसी है जैसे गमन करने वाले को चढ़ाव न हो और सामने की हवा हो तो व्यक्ति सुगमता से अपने गंतव्य को प्राप्त कर लेता है।

अभ्यास

अ. प्रश्नों के उत्तर लिखिए :-

१. निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग का क्या स्वरूप है ?
२. प्रभावना अंग किसे कहते हैं ?
३. आठ मद कौन-कौन से हैं ?
४. सम्यग्दर्शन की क्या महिमा है ?
५. उत्कर्षण-अपकर्षण किसे कहते हैं ?
६. देवपद - खेवपद धनवान कैसे बन गए ?
७. स्वाध्याय की सफलता किसमें है ?
८. सम्यक् ज्ञान के आठ अंग कौन-कौन से हैं ?
९. मनः पर्यय ज्ञान किसे कहते हैं ?
१०. अनशन तप किसे कहते हैं ?
११. प्रायश्चित्त तप किसे कहते हैं ?
१२. परिहार विशुद्धि चारित्र किसे कहते हैं ?
१३. आहारक शरीर कैसा होता है क्यों निकलता है ?
१४. चार इन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त के कौन-कौन से प्राण होते हैं ?
१५. जरायुज अण्डज जन्म किसे कहते हैं ?
१६. शहीद मोतीचंद द्वारा लिखे पत्र के कोई दो बिन्दु लिखिए ।

ब. छन्द, श्लोक, सूत्र को पूरा कीजिए -

१. यान ..... एकांत।
२. शुद्धे ज्ञाने ..... मुद्राकवाटम्।
३. नम्र ..... श्रोत।
४. बहु ..... सेतराणाम्।
५. औपशमिक ..... च॥
६. ध्यानाहूतो ..... लोकोपकार।
७. तूचेतन ..... सेचरना॥
८. कुन्द कुन्द ..... प्रणाम ।
९. इन्द्र ..... चक्रैशः ।
१०. आज्ञावश्यं ..... त्वत्परेषु॥

स. परिभाषाएं लिखें -

१. वीतराग चारित्र २. तैजस शरीर ३. पर्याप्ति ४. सम्मूर्छन जन्म ५. बहुमान
६. धारणामति ज्ञान ७. अनुगामी ८. गुरुमूढ़ता ९. उपगूहन अंग १०. संक्रमण

द. सही विकल्प चुनें -

१. तत्त्वार्थ सूत्र ग्रंथ के पांचवें अध्याय में कुल सूत्र संख्या है।
(क) ३३ (ख) ४२ (ग) ४७ (घ) इनमें से कोई नहीं

२. आठ कर्मों की उदय योग्य प्रकृतियाँ हैं:-
(क) १२२ (ख) १२० (ग) १४८ (घ) इनमें से कोई नहीं

३. गुरु का नाम नहीं छिपाना ज्ञानाचाय का अंग है।
(क) अनिहनवाचार (ख) विनयाचार (ग) बहुमानाचार (घ) इनमें से कोई नहीं

४. कार्मण शरीरों में प्रदेशों की संख्या है:-
(क) संख्यात (ख) असंख्यात (ग) अनंत (घ) इनमें से कोई नहीं

५. असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के प्राण होते हैं।
(क) ८ (ख) ९ (ग) १० (घ) इनमें से कोई नहीं

इ. अन्यत्र ग्रंथों से खोजें, ज्ञान बढ़ाएँ, पढ़ें और पढ़ाएँ-

१. आठ कर्मों में बन्ध, उदय योग्य प्रकृतियां, किस गुण स्थान में कितनी-कितनी हैं?
२. मतिज्ञान के ३३६ भेद कौन से हैं?
३. श्रुत ज्ञान के भेद प्रभेद कितने होते हैं?
४. देशावधि, परमावधि, सर्वावधि अवधिज्ञान किसे कहते हैं?
५. अवधिज्ञान की उत्पत्ति कैसे होती है?
६. मनः पर्यय ज्ञान के भेद कौन-कौन से हैं उनकी परिभाषायें भी बताएँ?
७. चारों गति में कौन सा शरीर होता है?
८. चौरासी लाख योनियाँ कौन सी हैं?
९. स्वतंत्रता संग्राम में शहीद हुए जैन श्रावक कौन-कौन से थे?
१०. मंगतराय जी बारह भावना का क्या अर्थ है?